शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 14
Issue 1&2
15July 2023

लोकगीतों में छिपे हैं प्रकृति के रंग

बीज शब्द :

संस्कृति, लोकगीत, प्रकृति, ग्रामीण संस्कृति, लोकजीवन, रीति–रिवाज, जन–साधरण,निश्छल मन

भारतीय संस्कृति का मूल ग्रामीण परिवेश रहा है। ग्रामीण संस्कृति में लोकजीवन की अभिव्यक्ति होती है। गीत, संगीत, नृत्य, राग–रंग लोकजीवन का प्राण है। भारत की सांस्कृतिक वैविध्यता के कारण लोकसंगीत अपने बृहद विशालकाय स्वरूप में लोक में व्याप्त है और इसी में रचा–बसा है जल, जीवन, और जंगल को सहेजने की कला या संदेश। प्रकृति ही मानव को उदारता सहानुभूति, सहिष्णुता आदि का पाठ पढ़ाती है। लोकगीतों में प्रकृति की पूजा और उसके माध्यम से भावों को बड़े ही सुन्दरतम् ढंग से प्रस्तुत किया जाता रहा है। ऐसे ही प्राचीन युगों में कला, संगीत और साहित्य, साथ ही नृत्य – संगीत की कला का विकास वैदिक काल के बाद तक जारी है और वे अनेक रूप – आकारों में सभी साहित्यों में भी विद्यमान है।

*****

डॉ० रेखा त्रिपाठी
क्षेत्रीय निदेशक/समन्वयक, कानपुर
राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

लोकगीतों में छिपे हैं प्रकृति के रंग

प्रस्तावनाः लोकगीतों में छिपे हैं प्रकृति के रंग

हमारी संस्कृति की आत्मा है लोकगीत। यह मनोरंजन के साथ-साथ श्रद्धा और परंपरा भी है। भारत में सभी प्रदेशों की अपनी-अपनी लोकसंगीत, लोक-कलायें होती हैं, जो वहां के रीति-रिवाजों, लोकजीवन की परंपराओं एवं जीवन जीने की कला को समावेशी ढंग से प्रस्तुत करती है। जिसमें कोई न कोई संदेश अवश्य छिपा होता है। यह संदेश लोकगीतों के माध्यम से सरल और स्थानीय भाषा में जन-जन तक शीघ्र पहुंच जाता है। लोकजीवन में रची-बसी ऐसी ही संस्कृति, प्रकृति से निकटता बनाये हुये लोकगीत लोक में जीवन को जीने की अमिट सीख देती है। इन लोकगीतों में प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर जीवन जीने की संभावना छिपी है। हम प्रकृति के समन्वय के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते।

वेदकालीन सभ्यता के साथ ही प्रकृति का संगीत लोकसुरों में रहा है। प्राचीन सभ्यता में भी तेज हवाओं के चलने से, बांसों के झुरमुटों की आपसी टकराहट से उत्पन्न ध्वनियों को सुनकर संगीत की ओर प्राचीन मानव सभ्यता ने कदम रखा था। सही अर्थों में कहा जाये तो प्रकृति ने स्वयं को संगीत के निकट होने से मानव को परिचित कराया था। वेदकालीन सभ्यता में प्रकृति पूजक ऋषियों ने संगीत को मद्धम और तेज गति की वायु के चलने पर उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को पिरोकर संगीत के सुरों को प्राप्त किया था। वैदिक सभ्यता में मानव ने पशु-पक्षियों के कलरव, उनके दौड़ने, भागने और बोलने से उत्पन्न ध्वनियों को संगीत में बदला और उनमें पिरोकर लोकसंगीत को रचा।1 वैदिक सभ्यता में लोकसंगीत रूपी ऋचाओं में जो आशीर्वाद प्रकृति से मिला वह पुष्प-वनस्पतियों की तरह शोभायमान है। दूर्वा की भांति जीवन को गुनने का आशीर्वाद देती है। इस तरह की लोकस्मृतियों से भारत का प्राचीन साहित्य भरा है।

वैदिक आर्यो ने संगीत की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए इसको धर्म से संबद्ध कर दिया जिससे संगीत कभी नैतिकता से अलग हटकर नीचे नहीं आयी और स्वमेव प्रकृति को रचा-बसाकर आगे बढ़ती रही। 'साम' गायन स्तुति रूप में भी होता था, जैसे सूर्य, अग्नि की स्तुति सामगान के द्वारा की जाती थी। वैदिक ऋषियों की मान्यता रही है कि संगीत में शक्ति का निवास है, इसलिये जब 'साम' गायन होता था तब ऋचाओं में प्रकृति का वर्णन ही विशेषकर किया जाता था।

ग्रामीण परिवेश में जब पावस ऋतु अपने आकार में आती है तब सम्पूर्ण संगीतमयी प्रकृति गुनगुना उठती है।[4] ऋतुओं के सहज प्रभाव से परिष्कृत लोकगीत प्रकृति के रस में भाव-विभोर हो उठते हैं। चौमासा (जुलाई से आरंभ होने वाला मास) के दौरान बारिश और बादलों की आशा में आम जन के अधरों पर लोकगीत अपने आकार लेने लगते हैं। प्रकृति के तत्व (क्षिति जल पावक गगन समीरा) मौसम और पर्यावरणीय परिवर्तनों से आकार लेती भावनायें स्वमेव लोकगीतों के द्वारा जनमानस के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों को रेखांकित करते हैं। लोकगीत सूखा, बारिश और मौसम के प्रत्येक परिवर्तन को परिभाषित करते हैं। लोकगीत और ग्रामीण कलायें मौसम, पर्यावरण और जलवायु को लेकर अपना ज्ञान प्रदर्शित करते हैं।[3]

पूर्वानुमानों और आंकड़ों से मौसम को जानने वालों के लिये इन लोकगीतों का भले ही महत्व न हो लेकिन, इन लोकगीतों को धान की रोपनी करती महिलाओ का समूह इसी आशा के साथ गाता है कि, उनके गाने से ही अधिक बारिश होगी। हल चलाते किसान, बीज डालती महिलायें बारिश के दौरान परंपराओं के आधार पर विरह और प्रेम के लोकप्रिय गीत भी गुनगुनाती है।[9]

ग्रामीण अंचल में रहने वाले हमारे पूर्वज प्रकृति पूजक थे। प्रकृति के प्रति बहुत श्रद्धा रखते और प्रकृति के संरक्षण को लेकर अत्यधिक सजग एवं जागरुक थे। वे वृक्षों, कुंआ, ताल-पोखरों की समय-यमय पर पूजा-अर्चन किया करते थे।

'मूले ब्रह्मा,त्वचा विष्णु, शाख शंकर मेव च।
पत्रे-पत्रे सर्वदेताम् वृक्ष राज्ञो नमोस्तुते।।'[11]

अर्थात- जिस वृक्ष की जड़ ब्रह्मा, तने पर श्रीहिर विष्णु, शाखाओं पर देवाधिदेव शंकर विद्यमान रहते हैं और जिस वृक्ष के पत्ते- पत्ते पर देवताओं का वास है, ऐसे वृक्षों के राजा पीपल को प्रणाम है।

आज भी ग्रामीण जन किसी भी पेड़ पर चढ़ते समय उसको पहले प्रणाम करते हैं, उनसे अपनी रक्षा की और उन पर पैर रखकर चढ़ने की आज्ञा लेते हैं। इससे पता चलता है कि हमारे संस्कारों में वृक्ष की कितनी अहमियत है, उन्हें ईश्वर का वास मानकर उनकी पूजा करतें हैं। प्रतीत होता है कि हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रकृति पर निर्भर आधारित है।

विषय की दृष्टि से लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों, ऋतुओं एवं दैनिक अनुभूतियों का चित्रण मिलता है। इनकी

कोटियों का वर्गीकरण कई आधारों पर कर सकते हैं जिसमें संस्कार गीत, ऋतुगीत, व्रत-पर्व गीत, जाति विषयक गीत, श्रम गीत एवं रस गीत शामिल हैं।4 लोकगीत भले ही श्रुति परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन इनमें भाषा और भाव की समृद्धि किसी भी दूसरे साहित्य से कमतर नहीं मिलती है। वस्तुतः लोकगीत प्रकृति और संस्कारों का निर्विवाद संरक्षण करते हैं। चूंकि भारत एक ऋतुप्रधान देश है इसलिए यहां पर प्रत्येक ऋतु का अपना महत्व है जिसकी प्रत्येक कल्पना लोकगीतों में सन्निहित मिलती है।

संस्कार गीतों में कटाई, बुआई, रोपनी, कजरी,फाग, चौती, बारहमासा, ऋतु गीत आदि सभी में पेड़-पौधे गंगा सरयू इत्यादि की महत्ता बतायी गई है। विभिन्न आयोजनों पर गाये जाने वाले गीतों में सर्वाधिक नीम, आम, महुआ, चन्दन आदि वृक्षों का वर्णन है। नीम को सर्वाधिक औषधीय गुणों वाला वृक्ष भी माना गया है। विवाह में गाये जाने वाले इस गीत में नीम के गुणों का वर्णन किया गया है, और उसके विशाल रूप के कारण उससे मिलने वाले छाह को विषय बनाया गया है -

''केहि गुन नीबिया कय हरी-हरी पतिया -2
अरे केहि गुन शीतल छाह रे.....।
अरे हरी - हरी निबिया के हरी-हरी पत्तिया, अरे पाती गुन शीतल छांह रे

इसी तरह बेटी के विवाह में गाया जाने वाला गीत भी इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है।

'' मोरे पिछवरवा लेवंगिया कय पेडवा
अछन-बिछन भय है डारि रे....
तेहि तर बाबा मोरा सोनवा संकल्पै
खोजे लागे सोहरा सोनार हो।।"

बेटी की शादी में गाया जाने वाला गीत जिसमें पिता अपनी पुत्री के लिये बढ़िया सोनार तलाश करके लाता है और अपने घर के पीछे लगे लौंग के पेड़ के नीचे बैठकर जेवर बनवाता है।

भोजपुरी लोकगीत बहुत ही प्रसिद्ध है। माता का पचरा है-
निमिया के डारि मैया झूलेले ली झुलेनवा।
हो भैया झूलेली झूलेनवा कि माई मोरि
झूला झूलेली - कि माई मोरी झूला-झूलेली।

नीम के पेड़ का नवरात्रों में बहुत महत्त्व रहता है। इस वृक्ष पर माता का वास कहा गया है। इसका एक वैज्ञानिक कारण भी कह सकते हैं कि - नीम एण्टीवायोटिक गुणों से भरपूर है। जब दो ऋतुओं के बीच परिवर्तन हो रहे होते हैं उस समय त्वचा इत्यादि के कई संक्रामक रोग हो जाते हैं उसमें सर्वाधिक उपयोगी नीम होती है। तब इसका उपयोग कई प्रकार के कष्टसाध्य रोगों में उपयोग किया जाता है।

इसी तरह का एक गीत और नीम के विशाल वृक्ष पर चिड़िया के घोंसले ओर माता-पिता के आंगन से विदा होती बेटी के मनोभावों को दर्शाता हैं।

''निबिया कय पेडवा जिन कटिहा बाबा।
निबिया चिरइया के बसेर.....।
बलइया लेहूं वीरन की
बाबा सगरी चिरइया उड़ि जइहैं
रहि जइहैं निबिया अकेल।।

परार्थ जीवन पर आधारित जो दूसरों को सुख देने के लिए कार्य किया जाए, ऐसे कार्यो को भी लोकगीतों द्वारा जीवन के संकल्प में प्रस्तुत किया गया यथा-

'कुँआ खोदाये कवन फल, हे मोरे साहब
ओकवन भरे पनिहारिन तबै फल होइहैं,
बगिया लगाये कवन फल है मोरे साहब
राही बार अमवा जे खइहै तबै फल होइहैं
पोखरा खोदाए कवन फल है मोरे साहब
गउंवा पिये जूड़ पानी तबै फल होइहैं।।'

अर्थात -यहां पर कहा जा रहा है कि कुँआ, बाग और पोखर क्यों खोदवा रहे हैं इससे क्या होगा। तब उसका उत्तर मिलता है पानी, जब राहगीरों को मिलेगा तो हमको पुण्य प्राप्त होगा। यह सोच कितनी विशिष्ट थी। निःस्वार्थ के लिए नहीं अनजाने लोगों के लिए पेड़ लगाने जा रहे हैं उनके लिए कुँआ खोदवाने जा रहे हैं - उत्कृष्ट सोच का परिचायक है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में जन्म से लेकर अवसान तक षोडश संस्कारों का महत्त्व बताया गया है, जिसमें एक महत्वपूर्ण संस्कार विवाह भी है। जो एक नये जीवन को जन्म देने की परम्परा श्रेणी को आगे बढ़ाता है। लेकिन केवल विवाह संस्कारों के लिए आयोजित होने वाले सभी रस्मों को देखने पर हम पाते हैं कि विवाह का प्रत्येक संस्कार केवल और केवल प्रकृति पर निर्भर है। जोकि अपने अलग-अलग रूपों में हमारे जीवन का हिस्सा बनती है। सूप, माटी, ओखल, मूसल, हेंगा, पटा, अनाज, जौ, आम का पल्लव, पलाश, गोबर, दूर्वा, मूंज, पान, फूल, कुआ, ताल, वन, आदि का हम संस्कारों के अन्तर्गत पूजन आदि करके सफल जीवन की कामना करते हैं।[8] हमारे पूर्वजों को ज्ञात था कि प्रकृति के किस भाग से कितना

प्राप्त करना है उसके कितना उपयोग करना है व ह सब एक अनुशासन में सनिबद्ध था। पर्यावरण संरक्षण एवं प्रकृति का संयोजन जो आज चर्चा में है,उसको भारत में हमारे पूर्वजों ने सरलतम् विधियों से अवगत कराया है। उन्होंने इन संस्कारों के माध्यम से हमको प्रकृति के प्रति सजगता बरतना सिखाया, उसके प्रति उदार रहना सिखाया किन्तु हम प्रकृति को देने की बजाये लेने में बहुत आगे निकल गये। वैदिक काल में वनस्पतियों की पूजा मन्त्रों के माध्यम से करते थे, तब इसका उद्देश्य मात्र हवन कर्म करना नहीं था अपितु प्रकृति को उसका सर्वग्य सौंपना ही एकमात्र हेतु होता था। ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः। 2

पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। (यजुर्वेद 36/17)

लोकगीतों में विवाह में मटिकोर के समय गाया जाने वाला गीत प्रस्तुत किया गया–

कंहवा के पीयर माटी कथि के कुदार हे।
कंहवा के सात सुहागिन मटिकोरे जात हो

विवाह का पहले संस्कार में मेरछुआ (मटिकोड) एक रस्म होती है उसमें महिलाएं ताल से मिट्टी लेने जाती है। उसी मिट्टी से विवाह में चूल्हा बनाया जाता है और उसी पर अनेक रस्मे होती है। इसीलिए ताल, पोखर, नदी, इत्यादि का जीवन के सभी संस्कारों में बहुत महत्व है

लोकगीतों में स्त्री जीवन के अविराम पक्षों की तलाश भी मिलती है जिसमें जल, जंगल, जमीन, पशु – पक्षी भी समाहित है। जिसमें मुक्ति की चाहत, उमंग, उत्प्रेक्षा, अभिलाषा और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सभी पक्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

इसका एक उदाहरण – बेटी अपने पिता से जब अपने स्वजनों की शिकायत करती है तब स्पष्ट रूप से बेटी प्रकृति के आशीर्वचनों से शब्द ग्रहण करते हुए ये कहती है बाबा– जिस वन में दूब भी नहीं मिलती है उस घर (वन) में मेरे लिए वर की तलाश क्यों की।

विवाह अवसर पर कोयल और तोते के रूप में गौने का एक गीत लोक में प्रचलित है –

सुतली कोयलर देइ के सुअना जगावे ल।
चलि चल हमरहिं देस हो।
बाबा क कोरवां छोड़ि द।
मयरिया गोदिया छोड़ि द ।।
तब कोयल तोते से पूछती है–
का खियइब सुगना का हो पियइब।
कहवां सोअइब सारी रैना....।
तोता कहता है दूधवा विइइबै कोइलरि भतवा खिअइबै हो।
कोरवां सोअइबै सारी रैन...।।

कोयल कहती है उसके घर में तो आंगन में आम का वृक्ष है उससे उड़कर वह रोज आकाश को छूती है तब तोता उसका जवाब देता है कि उसके घर में इमली और अनार का वृक्ष भी है।

अमवा कुपुटिहा कोइलर इमिलि कुपुटिहा हो....।

हमारे लोकगीतों में ऐसे तमाम प्रसंग मिलते हैं। कई बार विरह वेदना को अत्यधिक उलसाने वाले प्रसंग सामने आते हैं। कागा जहां शुभसंदेश लेकर आता है वहीं कोयल विरह का प्रतीत कराती है।

प्रकृति प्रदत्त लोकगीतों में विभिन्न प्रकार के आशीर्वाद मिलते हैं। जिसमें वनस्पतियों एवं फल–फूलों की तरह शोभित होने का वर मिलता है। दूर्वा की तरह जीवन को आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है। यह सब लोक की स्मृति है जो भारत के लोक–साहित्य में विद्यमान है। इसीलिए लोकसंस्कारों में प्रकृति के हर तत्व घुलकर अपनी मिठास जगाते मिलते हैं। मानव की प्रत्येक इच्छा में ऐसे रसों के तत्व विद्यमान हैं। तब लोक की सभी समस्याओं की तलाश प्रकृति में समाहित होकर मिलती है। वस्तुतः लोकगीत हमारे जीवन–विकास की गाथाएं हैं। जिनमें जीवन के उतार–चढ़ाव, सुख–दुःख, विरह–वेदना, सामाजिक, आर्थिक और सामाजिक रीतियों का समन्वय मिलता है।12 इस संन्दर्भ में देवेन्द्र सत्यार्थी कहते हैं कि लोकगीतों का विस्तार कहां तक है कोई नहीं बता सकता है। इनमें सदियों से चले आ रहे श्रुतियों पर आधारित विश्वास एवं परम्परायें जीवित होकर आगे बढ़ती रहती है। इनमें तर्क बहुत कम लेकिन भावनाओं का वेग अधिक होता है। लोकमानस में इनका प्रवाह सहज और स्वाभावित रूप से मिलता है। लोकगीतों की आत्मा लय होती है। ग्रामीण परिवेश के हृदय से निकलकर सीधे–सीधे शब्दों का संस्पर्श जब लोकतत्वों से होता है तब उसके अंतस में असीम सौन्दर्य उभरकर आनन्द की सृष्टि करते हैं। जिसके भीतर निरर्थक शब्द भी मधुर कण्ठ की लहरों पर सवार होकर विलक्षण सरसता को उत्पन्न करते हैं। लोकगीतों के गायन में किसी पंक्ति विशेष को दोबारा गाने की परम्परा है। इससे प्रकृति

गीतों की सुन्दरता बढ़ जाती है। जिसमें अलंकार की कमी लेकिन रसों की व्यंजना विशेष रूप से समाहित हो उठती है।[13]

निष्कर्ष:

भारतीय संस्कृति की सतत् धारा वैदिक काल से आज तक नित्य विकास करती हुई अनेकानेक उपलब्धियों की धात्री है। आज भी उसमें वह शक्ति है। हमें अपनी संस्कृति के जानना है उसके अनुसार आचरण करना है। लोक संस्कृतियों के माध्यम से अभी हमारी बहुत सारी धरोहरें जीवित, पुष्पित-पल्लवित हैं। हमारे पर्यावरण को हमारे जीने का तरीका एवं सजगता ही बचा सकती है। आस-पास के वातावरण को जीवंत रखने के लिए पर्यावरण के साथ ही साथ लोकपर्व और लोक संस्कारों को बचाए रखना अति आवश्यक है। तभी हम और हमारी भावी पीढ़ी, व जीव, जन्तु, पशु-पक्षी सुरक्षित रह सकेंगे।

संन्दर्भ सूची -

1-ऋग्वेद 10.90.12
2-अर्थव वेद पृथ्वी सूक्त
3-हिन्दूधर्म जीवन में सनातन की खोज विद्यानिवास मिश्र पृष्ठ संख्या 67-69
4-भारतीय धर्म और संस्कृति राम जी उपायाय पृष्ठ संख्या 112
5-शर्मा डा0 मृत्युंजय, त्रिपाठी राम नारायण, संगीत मैनुअल पृष्ठ 84-89
6-टाक सिंह डा0 तेज, सुबोध संगीत शास्त्र पृष्ठ -2
7-शर्मा भगवत शरण, भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ-14
8-शर्मा भगवत शरण, भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ-66
9- डा0 ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ-106
10- यजुर्वेद अध्याय 36 मन्त्र 17
11-स्कंदपुराण नागरखंड 247/41-42, 44
12- देवेन्द्र सत्यार्थी धरती गाती है - पृष्ठ 134
13-रात नरेश त्रिपाठी कवित कौमुदी ग्राम गीत पृष्ठ 78

डॉ रेखा त्रिपाटी
क्षेत्रीय निदेशक/समन्वयक- क्षेत्रीय केन्द्र कानपुर
राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

.....पृष्ठ ३२ का शेष

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण 1. 2.15
2. उपाध्याय, रामबिहारी, उत्तर भारत का पुराजैव पर्यावरण, फैजाबाद 2015 पृ. 24-25, सिंह, महेन्द्र प्रताप, वाल्मीकि की पर्यावरण चेतना, भाग 2, पृ. 13-186, सिंह, महेन्द्र प्रताप, वही, भाग १. पृ 12-291
3. Joshi, M-C, some aspicts of valmiki Ramayan, maharsi Valmiki Peeth, Punjabi University Patiyala, Symposiurn held on 27-2-97 8 National Seminar held on 9-10-12-97
4. तैतिरीय प्रातिशाख्य 5/36, 9/4,18/6
5. महाभारत आदिपर्व 50/14, समापर्व 6/14, वनपर्व 83/102 उद्योगपर्व 81/87
6. राम्रो दशरथस्यैव पितुर्गे मुनि पुंगव:। सखा परमको विप्रों वाल्मीकि सुमहायशा: भाल्मीकि रामायण
उत्तर काण्ड 47/16-17
7. विष्णु पुराण 3.3.18, मत्स्य पुराण 12/51, भागवत 6/181, कुमार सम्भव 2/21
8. अध्यात्म रामायण अयोध्या काण्ड, 6142-48 स्कन्द पुराण: वैष्णव खण्ड अध्याय 21. अवन्ति खण्ड
अध्याय 24, नागर खण्ड अध्याय 124, प्रभास खण्ड आध्याय 248
9 . तुलनीय, बुल्के, कामिल, राम कथा, पृ. 46-47
10. द्रष्टव्य, उपाध्याय, रामबिहारी, प्राचीन अयोध्या का राजनैतिक एवम सांस्कृतिक अध्ययन, पू 284-286
11. दास, ए सी, ऋग्वैदिक इण्डिया, पृ 113
12. दत्त, रमेश चन्द्र, हिन्दू सम्यता का इतिहास पृ. 133
13. Wheelar, JTB: India of Brahmanic Age, part, i.p.365
14. नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक 3-4. सम्वत 2005, वर्ष53, पृ. 240
15. रामायणी, रामकुमार दास, अनिन्दिता, पृ. 17
16. Sircar, D-C- The Studies in the Geography of Ancient 8Medieval India, p-40,उपाध्याय, रामबिहारी, पूर्वोद्धृत पृ. 192

दिनांक,16th May,2023